वर्ष : 3, समग्रांक : 10 जुलाई-सितम्बर 2013 मूल्य : 25 रुपये

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

सृजन-स्मरण

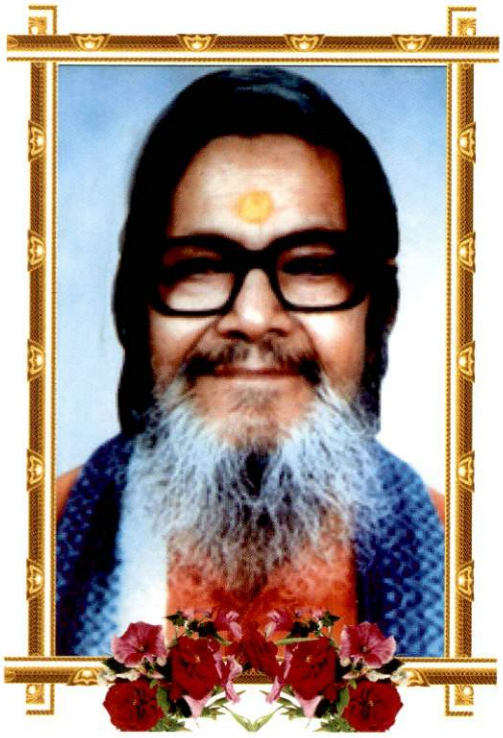

काका हाथरसी

(जन्म : 18 सितम्बर, 1906; निधन : 18 सितम्बर, 1995)

नियम प्रकृति का अटल, मिटे न भाग्य लकीर
आया है सो जायेगा राजा रंक फकीर
राजा रंक फकीर चलाओ जीवन नैय्या
मरना तो निश्चित है फिर क्या डरना भैय्या

(काका हाथरसी की एक कविता का अंश)

वर्ष : 3, समग्रांक : 10, जुलाई–सितम्बर, 2013 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'–एक बेजोड़ कवि	डॉ॰ अशोक 'मधुप'	3
श्रद्धा सुमन		
'बाबू जी' का ध्येय यही था	डॉ0 अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
अन्तर	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5
बादल और कच्चे घड़े	डॉ॰ जगदीश गुप्त	6
कभी मत करो माफ	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	7–8
काम हराम	काका हाथरसी	9
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार	शिवमंगल सिंह 'सुमन'	10
फूल रस के भरे	गिरिजा कुमार माथुर	11
समय के सारथी		
आजादी	कन्हैया लाल शास्त्री 'मुकुल'	12
परिवर्तन	प्रेम नारायण दीक्षित 'प्रेम'	13
जनता है फुटबॉल	बी॰ डी॰ वर्मा 'उदास'	14
हम बंधुआ मजदूर हैं!	अशोक सागर मिश्र	15
मैं भारत की माटी हूँ	दीपक राज 'बेजार'	16
आशय बदल गया	देवेन्द्र आर्य	17
देखो गंगा क्या कहती है	रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर'	18
खेतों पर उन्नति के बादल	राजा अवस्थी	19
नारी–स्वर		
औरत!	राधा रानी चौहान 'मानवी'	20
तुम मिलीं	सुनीता मिश्रा 'सुनीता'	21
प्रिये	डॉ॰ आशा गुप्ता	22
अगर इरादे पक्के हों	डॉ॰ नलिनी विभा 'नाज़ली'	23
चेहरों का कोलाज़	डॉ॰ पूनम चन्द्रा	24
घाट गुँजित हो गए हैं	डॉ॰ वीणा अग्रवाल	25
नारी शक्ति	ममता शर्मा	26–27
बदल गयी देश की तस्वीर	डॉ॰ (सुश्री) पीयूष भट्ट 'पीयूष'	28
जीवन का एहसास	कल्पना चौरसिया	29
ए दर्द ! भला अब तू ही बता	सखी सिंह	30
नवोदित रचनाकार		
नदी और नर	अभिनव पारासरी 'सागर'	31
हौसला	धर्मेन्द्र त्रिपाठी	32
बलिदान	प्रदीप शर्मा 'दीपक'	33
हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा	अशोक सिंहासने 'असीम'	34
मुरली	मनोज कुमार 'मंजुल'	35
गिर गया होता तो चढ़ गया होता	राजेन्द्र शुक्ल 'सहज'	36
लिफ़ाफ़ा	पंकज सुबीर	37
प्रकृति की गोद	संजय पाल शेफर्ड	38
स्वतंत्रता दिवस	लक्ष्मीदत्त तरुण	39
अंत में		
मुश्किलों के दौर को...	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संरक्षक मंडल

डॉ. एल.पी. पाण्डेय;
अभिमन्यु कुमार पाठक;
अरुण कुमार पाठक;
राजेश प्रकाश;
डॉ. अशोक मधुप
डॉ. सुनील जोगी

संपादक

शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय

418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो॰ : 9910912530

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा **प्रसून प्रतिष्ठान** के लिए **डॉ. अनिल कुमार पाठक** द्वारा **आप्शन प्रिन्टोफास्ट पटपड़गंज इन्ड. एरिया तथा 257, गोलागंज, लखनऊ** से मुद्रित एवं सी–49, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड़, लखनऊ से प्रकाशित ।

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय

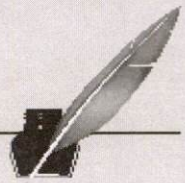

बीसवीं सदी के सातवें दशक में देश भर में एक आंदोलन चलाया गया था–चिपको आंदोलन। यह आंदोलन वृक्षों की रक्षा के लिए था। आंदोलनकारी काटे जा रहे वृक्षों से चिपक जाते थे और इस तरह उन वृक्षों पर चलायी जा रही आरी–कुल्हाड़ी से उनकी प्राण रक्षा करते थे। इस आंदोलन को चलाये जाने का कारण यह था कि वृक्षों के काटने से पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ता है और वातावरण में प्रदूषण बढ़ता है। यह प्रदूषण हमारे शरीर के लिए हानिकारक होता है। बाद में इस मुद्दे पर काफी चर्चा हुई और यह निष्कर्ष सामने आया कि वृक्ष हमारे लिए काफी महत्त्वपूर्ण है, और वृक्ष की रक्षा की जानी चाहिए। आज विश्व की तमाम सरकारें भी इस विचार की पक्षधर हैं। वृक्ष की पोषक हैं।

मित्रो, जिस तरह, तरह–तरह की गैस और रसायन हमारे पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं और हमारे जीवन को खतरे में डालते हैं, उसी तरह, तरह–तरह की नकारात्मक बातें और विचार हमारे आध्यात्मिक जगत को प्रदूषित करते हैं, और हमारी मानवीय सोच को खतरे में डालते हैं। इतना ही नहीं, ये हमारी शांति और शांति पूर्ण जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा हैं। आजकल तरह–तरह के संचार–साधनों के कारण विचार–संचार के क्षेत्र में क्रांति आ गई है। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया, इंटरनेट जैसे अत्याधुनिक संचार उपकरणों की उपलब्धता के कारण समाज में कई विसंगतियां पैदा हो गई हैं। इसमें से एक है अपात्र और अपरिपक्व लोगों के अंदर विशिष्टता का यह भाव पैदा हो जाना कि संचार–साधनों के माध्यम से वो अपने जिन विचारों को भीड़ के समक्ष रखते हैं उन्हें भीड़ द्वारा सुना और सराहा जा रहा है। अगरचे, भीड़ और संचार साधनों के बीच एक गठजोड़ बन गया है। यह गठजोड़ धुआँधार ऐसे घटिया विचारों को तेजी से समाज में फेंक रहा है कि देश का पूरा आध्यात्मिक वातावरण, भारत जिसके लिए सदियों से विश्व में विख्यात रहा है, प्रदूषित होता जा रहा है। विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि शब्द और विचार का अपना जीवन–काल होता है। हमारे चारों तरफ पैनलिस्ट–जर्नलिस्ट द्वारा ऐसी अनर्गल, अंगभीर, और बेसिर–पैर की बातें, टी वी सिनेमा–अखबार–इंटरनेट–रेडियो जैसे विभिन्न संचार माध्यमों द्वारा चौबीसों घंटे कही–लिखी–बोली जा रही हैं कि उनसे शांति और नीरवता प्रदान करने वाला सारा आध्यात्मिक वातावरण प्रदूषित होता जा रहा है। यह सारी नकारात्मकता मानव सोच और उसके क्रियाकलापों को प्रभावित कर रही है। हम एकांत में भी शांत नहीं हैं। एकांत आत्महत्या का वातावरण निर्मित करता है। ऐसा क्यों ? मित्रो, इसका उत्तर यही है कि हमने नकारात्मक विचारों को प्रवेश देने के सारे उपकरण तो जुटा रखे हैं, लेकिन सकारात्मक विचारों का संचार करने वाले उपकरणों से अपने को दूर कर लिया है। सकारात्मक विचारों का सबसे बड़ा उपकरण हमारे धार्मिक ग्रंथ हैं। इनके अलावा उत्कृष्ट काव्य और श्रेष्ठ पुस्तकों का पठन–पाठन भी हमारे अंदर सकारात्मक भावों का संचार करती हैं। जिस तरह पर्यावरणीय प्रदूषण को दूर करने के लिए चिपको आंदोलन चलाया गया और लोगों को वृक्ष का महत्त्व बताया गया उसी तरह से आध्यात्मिक प्रदूषण को दूर करने के लिए **प्रसून प्रतिष्ठान** की ओर से–'सदसाहित्य चिपको आंदोलन की शुरुआत की गई है। पारस–परस इसी आंदोलन की अगुआई कर रही है। हमें विश्वास है कि इस कार्य में सदैव की भांति आपका सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

पारस–परस पत्रिका के प्रेरणा स्रोत स्वर्गीय पं॰ पारस नाथ पाठक 'प्रसून' की 17 जुलाई को 80वीं जयंती है। उनकी स्मृति को अपने हृदय में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए हम पारस–परस के इस अंक के मुख्य पृष्ठ पर उनका चित्र दे रहे हैं।

पारस–परस के इस अंक में जिन रचनाकारों की रचनाओं का चयन किया गया है, हम उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' – एक बेजोड़ कवि

–डॉ॰ अशोक मधुप

प्रसून प्रतिष्ठान के प्रणेता और 'पारस–परस' के प्रेरणा स्त्रोत स्वर्गीय पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की 17 जुलाई को 80वीं जयंती है। स्वर्गीय 'प्रसून' न केवल एक कुशल शिक्षाविद थे, अपितु वो एक ऐसे बेजोड़ कवि भी थे, जो आज भी अपनी रचनाओं के माध्यम से हमारे मन में रचे–बसे हैं। पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के ग्राम–गोपालपुर में 17 जुलाई, 1932 को हुआ था। आपने काशी विद्यापीठ, वाराणसी से हिन्दी और इतिहास विषयों में परास्नातक उपाधियाँ लेने के साथ ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से साहित्य रत्न की उपाधि भी प्राप्त की। आप व्यवसाय से एक शिक्षक थे, लेकिन मन–चिन्तन से कवि। आपने किशोरावस्था में ही कविता लेखन आरम्भ कर दिया था। आपके कविता संग्रह 'स्वर बेला' में प्रकाशित अधिकतर रचनाएं किशोरावस्था और युवावस्था में लिखी गई हैं।

स्वर्गीय 'प्रसून' जिस कालखण्ड में काव्य–साधना में रत थे, वह काल खंड उत्तर छायावादी युग और प्रगतिवादी युग का संक्रमण काल था। अतः यह स्वाभाविक था कि उस समय की काव्यधारा के प्रतीक, बिंब, और भावबोधों के साथ–साथ, मानवीय प्रेम, मानवीय चेतना, सांस्कृतिक चिंतन और सार्वभौमिक वेदना, वैयक्तिक प्रणय और प्रार्थना की गहराई जैसी वो सभी विशिष्टताएं उनके काव्य में स्थान पायें, जो कि उस समय की काव्य–धारा में हलचल पैदा करती थीं। स्वर्गीय 'प्रसून' की रचनाओं को पढकर ज्ञात होता है कि वह एक निर्द्वंद सोच के ऐसे असाधारण 'रचनाकार' थे, जिनकी कविता के शिल्प पर बहुत अच्छी पकड़ थी। उनकी भारत–स्तवन, जो मैं भी कवि हो जाता, कोई न आया मेरे पास, नाश तू निर्माण मैं हूं, मैं तुमको प्यार किया करता हूं, किसी के मधुर मिलन की बात, जैसी तमाम कविताएं हैं, जो उनकी रचना–धर्मिता की इन्हीं विशिष्टताओं को उजागर करती हैं। उनकी रचना–धार्मिता का संसार बड़ा व्यापक था। इस बारे में, स्वर्गीय प्रसून के सुयोग्य पुत्र, काव्य–मर्मज्ञ और कवि डॉ॰ अनिल कुमार पाठक लिखते हैं –''बाबू जी, सामाजिक असमानता, दुराचरण व शोषण से चिन्तित हैं और उसके विरुद्ध अपनी रचना में मुखर भी होते हैं। कभी–कभी वे अपनी रचनाओं में भौतिक जगत से परे आध्यात्मिक सत्ता से एकाकार होना चाहते हैं। समग्रतः, उनकी रचनाएं जीवन के हर पहलू को स्पर्श करती हैं और वे ऐसी समतामूलक सृष्टि के समर्थक हैं जिसमें स्नेह, प्रेम, करुणा, सदाचार, भाईचारा, सत्य अहिंसा का स्थान है, जो कि भारतीय संस्कृति का मूल प्राणतत्त्व रहा है और ऐसी सृष्टि से दुराचार ईर्ष्या, द्वेष, विवाद का अन्त चाहते हैं जिसके लिए महामानव बुद्ध ने राजप्रासाद का भी त्याग कर दिया था।''

किसी भी रचनाकार–कलाकार की सबसे बड़ी पूंजी उसकी वह गहरी जीवन दृष्टि होती है जिसे वह अपने जीवन के अनुभवों से प्राप्त करता है। उसकी यह गहरी दृष्टि ही उसे असाधारण व्यक्तित्त्व का स्वामी बनाती है। स्वर्गीय 'प्रसून' ने इस जीवन और संसार को बड़े ही निकट से देखा और उसका अनुभव भी किया। उन्होंने स्वंय लिखा है– ''मैंने समाज में दुराचरण, अनाचरण, ईर्ष्या तथा द्वेष की प्रवृत्ति बहुतायत से देखी है, झेला भी है और यदा कदा विरोध भी किया है, परिणामस्वरूप जीवन बहुत ही दुरूह और शुष्क हो गया''। जीवन में जब ऐसी दुरूहता और शुष्कता आती है, तब निश्चित तौर पर वह आँखों में आर्द्रता लाती है, और यही आर्द्रता कभी–कभी सृजनात्मकता का रूप धारण कर लेती है। इस स्थिति में, जो काव्य लिखा जाता है वह जीवन की व्याख्या के लिए नहीं होता, अपितु जीवन को बदलने के लिए होता है। स्वर्गीय 'प्रसून' का काव्य इसी लिये अनूठा एवं श्रेष्ठ है।

स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की 80वीं जयंती के इस पावन अवसर पर प्रसून प्रतिष्ठान के सभी सदस्यों की ओर से हम उन्हें अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

'बाबू जी' का ध्येय यही था

– डा॰ अनिल कुमार पाठक

बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।
'बाबू जी' का ध्येय यही,
सबको हमें बताना।।
मानव के संग मानव का,
व्यवहार बना है कैसा।
तेरी जाति–धर्म क्या भाई ?
तेरा रंग है कैसा ?
मुझसे भिन्न तुम्हारी भाषा,
देश–वेश भी कैसा ?
हैं अभिन्न जब मूल रूप में,
देख न ताना–बाना।
बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।।
मानवता के महासिंधु में,
पग–पग पर क्यों भंवरें।
ऊँच–नीच, परपीड़ा–निंदा
की दुःखदायी लहरें।
क्षुद्रमनस्, संकीर्ण हृदय,
क्यों हम इस पर ठहरें।
मानवता ही तेरा सम्बल,
तेरा यही ठिकाना।
बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।
केवल आगे चलने से ही,
कोई बड़ा न होता।
पिछलग्गू बनना है जैसे,
खुद को देना धोखा।
सबको लेकर साथ चले जो,
वही मसीहा होता।
सब मिलकर सबको अपनायें,
हो न कोई बेगाना।
बाँध प्रीति के धागे सबसे,
मत बन तू अनजाना।

❖❖❖

अन्तर

– पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

एक तड़पे रोटियों को
दूसरा मोदक उड़ाता।
एक तरसे धोतियों को,
दूसरा टाई लगाता।

एक रोता भूख से तो,
दूसरा है गीत गाता।
एक के दुःख–वेदना में,
दूसरा आनन्द पाता।

एक अत्याचार ही में,
शान है अपनी समझता।
दूसरे का शीश फिर भी,
द्वार पर है नित्य झुकता।

एक के वैभव जलाकर
दूसरा होली मनाता,
एक का सुख लूट कर ही
चैन की वंशी बजाता।

एक जीवन अरु मरण को
जानता संसार में है।
यह गरीबी लिख गई है,
जानता बस भाग्य में है।

❖❖❖

डा. जगदीश गुप्त

डा॰ जगदीश गुप्त का जन्म जुलाई, 1924 में उत्तर प्रदेश के हरदोई जिला के शहाबाद कस्बे में हुआ था। ये प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष रहे । डा॰ जगदीश गुप्त उच्च कोटि के कवि हैं। ये नई कविता आंदोलन के महत्त्वपूर्ण स्तंभ रहे हैं। इनका शिल्प छायावादी शिल्प के निकट रहा है। एक अच्छे चित्रकार होने के कारण इन्होंने अपनी कविताओं में चित्रकला की तरह सूक्ष्म रेखांकन किया है। इनका निधन 16 मई, 2001 को हुआ।

बादल और कच्चे घड़े

ओ रे अविवेकी
जिन पर कारुण्य उमड़ता तेरा
ये सब घट कच्चे हैं।

तेरा आवेग प्रखर,
धार नहीं पायेंगे।
एक दौंगड़े से ही–
घुलकर गल जायेंगे।

धवल पारदर्शी जल
इन पर पड़ कीचड़ कहलायेगा।
तेरी ममता की कुछ बूँदों से
इनका अस्तित्व बिखर जायेगा।

ओ रे ओ नभचारी !
भाँप नही सूरज को
अपने इन श्यामल जल–पंखों से।
तपने दे अभी और–अभी और
अग्निदाह की तीखी अन्तर्भेदी ज्वाला
बुझा नहीं
– शीतल द्रव रिमझिम से
तपने दे अभी और तपने दे,
तन–मन सब अनुभव की आँच में पनपने दे

पकने पर शायद कुछ धार सकें।
कच्चे घट जितना भी पकें, पकें।

जो जल को मोती कर दे
ऐसी सीप बिरल होती है।
ये घट तो सब के सब कच्चे हैं –
जिन पर तेरी करुणा रोती है।

❖❖❖

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का जन्म उत्तर प्रदेश के बस्ती जिला में 15 सितम्बर 1927 को हुआ था। आपकी रचनाएं समसामयिक जीवन की राजनैतिक, सामाजिक व नैतिक विद्रूपताओं /विषमताओं से ओत प्रोत हैं। इनकी रचनाओं में व्यंग्य का पुट रहता है। आप 'दिनमान' और 'पराग' के संपादक रहे हैं। आपको अपने कृतित्त्व के लिए साहित्य अकादमी अवार्ड से सम्मानित किया गया है। आपका निधन 24 सितम्बर 1983 को हुआ।

कभी मत करो माफ

यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में आग लगी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में सो सकते हो ?
यदि तुम्हारे घर के
एक कमरे में लाश पड़ी हो
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में गा सकते हो ?
यदि तुम्हारे घर के एक कमरे में
लाशें सड़ रही हों
तो क्या तुम
दूसरे कमरे में प्रार्थना कर सकते हो ?
यदि हाँ
तो मुझे तुमसे
कुछ नहीं कहना है।
देश कागज पर बना
नक्शा नहीं होता
कि एक हिस्से के कट जाने पर
बाकी हिस्से उसी तरह साबुत बने रहें
और नदियां, पर्वत, शहर–गाँव
वैसे ही अपनी–अपनी जगह दिखें
अनमने रहें।
यदि तुम
यह नहीं मानते
तो मुझे तुम्हारे साथ
नहीं रहना है।
इस दुनिया में
आदमी की जान से बड़ा
कुछ भी नहीं है
न ईश्वर
न ज्ञान
न चुनाव
न संविधान।
इनके नाम पर
कागज पर लिखी कोई भी इबारत
फाड़ी जा सकती है
और जमीन की सात परतों के भीतर
गाड़ी जा सकती है।
जो विवेक
खड़ा हो लाशों को टेक

.....जारी

वह अन्धा है
जो शासन
चल रहा हो बन्दूक की नली से
हत्यारों का धन्धा है
यदि तुम
यह नहीं मानते
तो मुझे
अब एक क्षण भी
तुम्हें नहीं सहना है।
याद रखो
एक बच्चे की हत्या
एक औरत की मौत
एक आदमी का गोलियों से चिथड़ा तन
किसी शासन का ही नहीं
सम्पूर्ण राष्ट्र का है पतन।
ऐसा खून बहकर
धरती में ज़ज़्ब नहीं होता
आकाश में फहराते झण्डों को
काला करता है।
जिस धरती पर
फौजी बूटों के निशान हों
और उन पर
लाशें गिर रही हों
वह धरती
यदि तुम्हारे खून में
आग बनकर नही दौड़ती
तो समझ लो
तुम बंजर हो गये हो–
तुम्हें यहाँ साँस लेने तक का नहीं है अधिकार
तुम्हारे लिए नहीं रहा अब यह संसार।
आखिरी बात
बिल्कुल साफ
किसी हत्यारे को
कभी मत करो माफ
चाहे हो वह तुम्हारा यार
धर्म का ठेकेदार
चाहे लोकतन्त्र का
स्वनामधन्य पहरेदार।

❖❖❖

दीन चहें करतार जिन्हें, सुख सो तो रहीम टरे नहिं टारे
उद्यम पौरुष कीने बिना, धन आवत आपुहिं हाथ पसारे
दैव हँसे अपनी अपनी बिधि के परपंच न जात बिचारे
बेटा भयो वसुदेव के धाम औ दुंदुभि बाजत नंद के द्वारे
–रहीम

काका हाथरसी

काका हाथरसी का जन्म उत्तर प्रदेश के हाथरस में 18 सितम्बर, 1906 को हुआ था। आपका वास्तविक नाम प्रभुदयाल गर्ग था। हिन्दी कविता में हास्य रस का सूत्र पात्र करने वालों में काका हाथरसी का प्रमुख स्थान है। इन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समाज में व्याप्त कुरीतियों, भ्रष्टाचार और राजनीतिक कुशासन की ओर जनसमान्य का ध्यान आकृष्ट किया। काका हाथरसी काव्य मंच के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि रहे हैं। आपकी स्मृति में काका हाथरसी हास्य पुरस्कार प्रदान किया जाता है। आपका निधन 18 सितम्बर, 1995 को हुआ।

काम हराम

काम की न करो बात, राम की कसम,
काम नाम धाम हों, आराम में भसम।

काम सामने हो उसे छोड़ दीजिए,
हाथ उठे काम को मरोड़ दीजिए।
काम बिना होना चाहें कामयाब तो,
कामियों के हाथ–पैर तोड़ दीजिए।

खाइये श्रीकृष्ण के निष्काम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

कामगार से बड़े हैं कामचोर जी,
कामचोर के पिता हरामखोर जी।
'काम न करो' की सदा कामना करो,
कामिनी–कटारियों का सामना करो।

रूज, लिपस्टिक व टीमटाम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

शौक है शराब का तो होने दीजिए,
बीवी–बच्चे रोयें उन्हें रोने दीजिए।
शायरी का मूड मत खराब कीजिए,
एक पंक्ति लिखिये दो प्याले पीजिए

जाम की कसम, उमर खैयाम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

हों रसिक तो रसभरी कविता बनाइए,
गीतकार बनके प्रेम–गीत गाइए।
वीररस से फाड़ डालो कान के परदे,
हास्यरस टपकाएँ तो दाढ़ी बढ़ाइए।

शेव के पैसे बचें, हज्जाम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

कलयुगी कुमारियों के इल्म देखिए,
रोटियाँ मिलें न मिलें फिल्म देखिए।
फूँकिए सिगरेट या सीटी बजाइए,
राष्ट्रगान हो रहा हो, भाग जाइए।

लुत्फ मिले मुफ्त के प्रोग्राम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

छोड़िए सब तीर्थ, कहीं को न जाइए,
आइए 'रविन्द्र सरोवर' में नहाइए।
गोपियों के चीर हरो, शर्म मत करो।
क्रूरता भी काँप जाये कर्म वह करो।

पश्चिमी बंगाल के हुक्काम की कसम,
काम की न करो बात, राम की कसम।

❖❖❖

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 5 अगस्त, 1915 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिला के झगरपुर गाँव में हुआ था। लेकिन उनका कर्मक्षेत्र मध्यप्रदेश रहा। वह ग्वालियर के विक्टोरिया कालेज में व्याख्याता, माधव महाविद्यालय के प्राचार्य और कुलपति रहे। शिवमंगल सिंह सुमन, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में सर्वाधिक लोकप्रिय और चर्चित रचनाकार रहे। उन्हें पद्म श्री, पद्मभूषण, भारत–भारती जैसे कई सम्मानों से सम्मानित किया गया। उनका निधन 27 नवम्बर, 2002 को हुआ।

मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार

मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था।

गति मिली, मैं चल पड़ा,
पथ पर कहीं, रुकना मना था।
राह अनदेखी, अंजाना देश,
संगी अनसुना था।।

चाँद सूरज की तरह चलता,
न जाना रात–दिन है ?
किस तरह हम–तुम गये मिल,
आज भी कहना कठिन है।।

तन न आया माँगने अभिसार,
मन ही जुड़ गया था।
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था।

देख मेरे पंख चल, गतिमय,
लता भी लहलहायी।
पत्र–आँचल में छिपाये मुख–
कली भी मुसकरायी।।

एक क्षण को थम गये डैने,
समझ विश्राम का पल।
पर प्रबल संघर्ष बन कर,
आ गयी आँधी सदल बल।।

डाल झूमी, पर न टूटी
किन्तु पंछी उड़ गया था।
मैं नहीं आया तुम्हारे द्वार,
पथ ही मुड़ गया था।।

❖❖❖

कोई मस्जिद गुरुद्वारे न शिवाले होंगे
सिर्फ़ तू होगा तेरे चाहने वाले होंगे
–बेकल उत्साही

गिरिजा कुमार माथुर

गिरिजा कुमार माथुर का जन्म 22 अगस्त, 1919 को मध्यप्रदेश के अशोक नगर में हुआ था। गिरिजा कुमार माथुर एक कवि/गीतकार के साथ योग्य समीक्षक भी थे। इन्होंने अपनी कविताओं में प्रकृति के विभिन्न रूपों का सक्षम और सशक्त भाषा में चित्रण किया है। इन्हें शलाका सम्मान और साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इनका निधन 10 जनवरी, 1994 को हुआ।

फूल रस के भरे

पिया आया बसन्त फूल रस के भरे.....।
फूल रस के भरे.....।
गन्ध जूड़े कसे
चली पियरी बतास
छायी मन के दिगन्त
अमलतासी उजास
रोम तन गुल मुहर
लाल शीतल चिराग
गोल फूलों में घुँघची से–
काले पराग
नयी सरसों के फूलों से केसर झरे।
फूल रस के भरे.....।

देह कुसुमति मृणाल
जैसे गेहूँ की बाल
जैसे उचकौंहे बौरों से–
रोमिल रसाल
किशमिशी चन्द्रलट
कसमसे उर प्रियाल
आयी फागुन की रात
हाथ हल्दी रचे
चाँद की छाप खामोश अधरों धरे।
फूल रस के भरे।

❖❖❖

आजादी

– कन्हैया लाल शास्त्री 'मुकुल'

आजादी है मिल गई, हुए सभी आजाद।
उलटा–सीधा कर रहे, हुआ देश बर्बाद।।
हुआ देश बर्बाद, विदेशी बने स्वदेशी।
खान–पान–पहनाव, बोलना हुआ विदेशी।।
कहें 'मुकुल' कवि सत्य, पहनते बिरले खादी।
अंगरेजों के बाप बन गये पा आजादी।।

आजादी से चल रहे, सकल देश के काम।
मनमानी नेता करें, होकर बिना लगाम।।
होकर बिना लगाम, घूँस घूँसें घुसवाते।
होते जिससे रुष्ट, शीघ्र उसको मरवाते।।
कहें 'मुकुल' कवि सत्य, निरंकुश अवसरवादी।
घूमें नेता नित्य, चहुँदिशि पा आजादी।।

आजादी से बढ़ गये, चहुँदिशि डाकू–चोर।
लम्पट, कपटी, क्रूरजन, भ्रष्टाचारी घोर।।
भ्रष्टाचारी घोर, बलात्कारी–व्याभिचारी।
अबलाओं की लाज लूटते, पापाचारी।।
कहें 'मुकुल' कवि सत्य, धूर्त कमा रहे चाँदी।
लुटते सीधे सन्त, असंतों की आजादी।।

आजादी का चढ़ गया, ऐसा सबपै रंग।
मानो ली हो भंग पी लगे मचाने जंग।।
लगे मचाने जंग, निहंग नाच दिखलाते।
करते कर्म कुकर्म, न डरते हैं, डरवाते।।
कहें 'मुकुल' कवि सत्य, विकट बेशर्मी लादी।
पीटें, पिटलें किन्तु न सुधरें पा आजादी।।

आजादी पा हो गये, अधिकारी सब भ्रष्ट।
बिना घूँस के काम कुछ करते नहीं, निकृष्ट।।
करते नहीं, निकृष्ट, बिना अंकुश के हाथी।
फिर झूमते मस्त, प्रजा का कोई न साथी।।
कहें 'मुकुल' कवि सत्य, चढ़ी भ्रष्टों पै बादी।
बढ़ा बैंक बैलेंस, मिली जबसे आजादी।।

❖❖❖

संपर्क : ताल बेहट, उत्तर प्रदेश

परिवर्तन

– प्रेम नारायण दीक्षित 'प्रेम'

बीत गयीं बरसातें,
उतर गया राहों का गीलापन।
मौन हुये चातक के प्यासे स्वर,
उतर गया घन का कजरीलापन।।

श्याम घटा से शंकित चन्द्र छटा,
नाप आयी झीलों की गहरायी।
पथिकों से आतंकित पंथ लता,
पंथ छोड़ मेड़ों पर छतरायी
खेतों से राग तोड़ नद पोखर तालों की
सिमटा दादुर का दरदीलापन। बीत गयीं....

वसुधा की शरदीली तृष्णाएं,
भूलीं पावस का मधु रस चुम्बन।
गीता के गायन में भूले ज्यों,
मोहन राधा का बृज आलिंगन।।
जैसे भोगी मन स्वाभाविक ही,
कभी–कभी करता योगीलापन। बीत गयी....

अलसाये दिनकर ने बेध दिये,
तप्त तीर तरल पंक माला में।
सृजन के प्रणेता ने पूर दिये,
चारु चौक स्वर्ण शष्य शाला में।।
शुद्ध संस्कारों से मिट जाता
ज्यों मानव मन का मदरीलापन। बीत गयी....

फूल उठे काँस, गयी बरषा ऋतु,
नदियों ने झलकाया निर्मल तन।
आँजे आँखों को खंजन आये,
पाया ऋतु प्रिय का रस परिवर्तन।।
जैसे अपनों को अपनाकर के,
भावन मन मेंटे शरमीलापन। बीत गयी....

❖❖❖

सम्पर्क : उरई, उत्तर प्रदेश

जनता है फुटबॉल

– बी. डी. वर्मा 'उदास'

एक बनाये, एक ढहाये, बैठाये आयोग
दशकों चलतीं जाँच, मुकदमें, भूल जाएं सब लोग।
शासन और प्रशासन के बीच जनता है फुटबाल
मन मसोस, चुप हो, सब सहती मान, भाग्य का भोग।

लकवा मार जाये वादों को, कोमा में सिद्धांत
मेरा दामन तुझसे उजला, चलते हैं वेदांत
अंत काल तक चलता इनका सत्ता से सम्भोग।

ताल, तलैया, नदिया, नाले, वन, पर्वत, मैदान हुये
बिन पटरी की नहरें देखो, घूरों से भर गये कुएं
जब तक हो ईज़ाद दवा का, नया रूप ले रोग।

नहीं पता चलता यारों के, मन में कितना खोट है
अगल–बगल, आगे–पीछे से, कब पहुँचा दें चोट ये
चढ़ी गाल की बोटी तक है, बस इनका सहयोग।

नक्कालों, मक्कारों हाथों बंधी देश की डोर
घात लगाये दुश्मन बैठे, दिखते हैं चहुँओर
हर ढपली का राग अलग है, हर सुर में हठ योग।

मंच विराजा, पाठ पढ़ाये, सदाचार का व्यभिचारी
निज हित भाषा, परिभाषा में, रची पोथियां प्यारी
पंद्रह हँसें पचासी रोंयें, है 'उदास' दुर्योग।

❖❖❖

सम्पर्क : उरई, उत्तर प्रदेश

हम बंधुआ मजदूर हैं!

– अशोक सागर मिश्र

नहीं पेट में रोटी फिर भी जीने को मजबूर हैं,
हम बंधुआ मज़दूर हैं– हम बंधुआ मज़दूर हैं।
नहीं कोई अधिकार हमारा, सुख–सुविधा से दूर हैं,
हम बंधुआ मज़दूर हैं–हम बंधुआ मज़दूर हैं।।

कहने को इंसान हैं हम, पर हालत पशुओं जैसी।
हम क्या जाने सुख क्या होता, होती आशा कैसी।
ग़म खा के आँसू पीते, पर लेते साँस जरूर हैं।
हम बंधुआ मज़दूर हैं–हम बंधुआ मज़दूर हैं।।

दादा–परदादा का कर्ज़ा, मरकर भी हमें चुकाना है।
अपराध किया किसने पर सजा हमी को पाना है।
निर्धन के घर जन्म लिया है इतना मेरा कसूर है।
हम बंधुआ मज़दूर हैं–हम बंधुआ मज़दूर हैं।।

टूटे बचपन के टुकड़ों को रही जवानी ढोती।
और जालिमों ने छीने, मेहनत के मेरे मोती।
देते हैं जो ग़म बदले में, हम करते मंजूर हैं।
हम बंधुआ मज़दूर हैं–हम बंधुआ मज़दूर हैं।।

प्रश्न–चिन्ह हम बने खड़े हैं, कब तक होगा अत्याचार।
हम भी हैं इन्सान चाहिये हमको जीने का अधिकार।
सदियों से चल रहे राह पर फिर भी मंज़िल दूर हैं।
हम बंधुआ मज़दूर हैं–हम बंधुआ मज़दूर हैं।।

❖❖❖

संपर्क : बालाघाट, मध्यप्रदेश

मैं भारत की माटी हूँ

– दीपक राज 'बेजार'

क्यूँ रोज़ तिरंगे में लिपटी
मुझको तस्वीर दिखाते हो
भरा खून से लाल मुझे
मेरा कश्मीर दिखाते हो

मैं भारत की माटी हूँ
बहकाओगे मुझको कब तक
मुझको घायल करने वालों से
हाथ मिलाओगे कब तक

जग गण मन की भाषा को
तुम निर्लज्ज नहीं गुन पाते
इससे तो मैं बाँझ भली
पैदा होते ही मर जाते

लाल किले की प्राचीरों से
फिर झंडा फहरायेंगे
अपनी झूठी थोथी बातें
बार–बार दोहरायेंगे

घात लगाए बैठे हैं
सिंहासन कैसे पाना है
सत्ता हासिल होते ही
फिर मूक बधिर बन जाना है

जब वीर सपूतों को दुश्मन
सीमा पर नींद सुलाता है
यहीं नंपुसक सिंहासन
गिरगिट के रंग दिखाता है

भोली भाली जनता को
कब तक यूँ ही बहलाओगे
क्या समय कभी वो आएगा
जब माँ का कर्ज़ चुकाओगे।

❖❖❖

आशय बदल गया

– देवेन्द्र आर्य

(1)

बेशक अर्थ वही हो
आशय बदय गया
गतियाँ भीतर बाहर की कुछ यों बदलीं
जीने का अंदाज़ महाशय बदल गया।

अहम् सिकुड़ता जाता फिर भी वयं नहीं
भावबोध बदले हैं लेकिन शिवं नहीं
सीमाएँ तदर्थ होती हैं–
टूटेंगी
जाने क्या–क्या बदला लेकिन एवं नहीं

जीवन का रस नहीं बदलता रुचियों से
प्यास वही है
भले जलाशय बदल गया।

चीज़ों से ज़्यादा चीज़ों का मतलब है
नहीं हो सका था जो तब
वो सब अब है
नहीं बदल के ही चीज़ें सड़ जाती हैं
जीवित रहना भी जीवन का करतब है

देह के बाहर देह बिना कायिक प्रजनन
गोद नहीं बदली
गर्भाशय बदल गया।

(2)

मन सूखे पौधे लगते हैं

मन सूखे पौध लगते हैं
रातों के बातूनी खंडहर दिन,
कितने बौने लगते हैं।

मन में उपजे मन में पनपे
मन में उम्रदराज़ हो गए
मन ही मन लड्डू से फूटे
मन ही मन नाराज़ हो गए
ढेरों ढेरों बहुत बुरे भी
कभी कभी अच्छे लगते हैं।

बात नहीं बस ढंग कहने का
शाम नहीं चुप्पी खलती है
आग नहीं तासीर से डरना
ठंडी दिखती है जलती है
पल पल बदल रहे हैं फिर भी
हर पल इकलौते लगते हैं।

भरता जाता रिसता जाता
अजब गजब है अपना खाता
आगे दौड़े पीछे देखे
मन का भी कुछ समझ न आता
जीवन के पिछले पन्ने हम
घाटे का सौदा लगते हैं।

❖❖❖

देखो गंगा क्या कहती है

– रामकृष्ण द्विवेदी 'मधुकर'

गुमसुम–गुमसुम
सिसक–सिसक क्यों एकाकी बहती रहती है
देखो गंगा क्या कहती है ?

सुना कह रही
"छला जा रहा है मुझको कह मुक्तिदायिनी
जबकि अब मैं मात्र बन चुकी–हूँ कचरा–मल–मूत्र वाहिनी"
सही बात, हरपल–हरक्षण वह उपहासित होती रहती है
देखो गंगा क्या कहती है ?

जब–तब देखो
अपने बिल से निकल–निकल बहु संत महात्मा–
आते तो रखती निकाल उर, हो जाती मैं पुनः हुतात्मा
स्वार्थ सिद्ध कर फिर वह टोली कितना देर ठहरती है
देखो गंगा क्या कहती है ?

संत महात्मा
नेता जनता आंदोलन कर लेते नाम
पर वह मेरे लिये नहीं प्रिय, स्वार्थ सिद्धि के हेतु तमाम
फिर भी कितनी भोली भावुक हर आतप सहती रहती है
देखो गंगा क्या कहती है ?

कहते अरबों
बहा दिये पर आँचल तो मैला का मैला
खुशी, पुत्र हो गये अरबपति मेरा क्या? तन रहे कुचैला"
हाय! मात्र तन ही क्या मन से भी वह सदा दहकती है
देखो गंगा क्या कहती है ?

❖❖❖

खेतों पर उन्नति के बादल

– राजा अवस्थी

(1)

राम रतन

एक कनस्तर चार चादरें
लिए चंद भांड़े बर्तन
घर छोड़ा आ गया शहर में
गाँव से भैया राम रतन

चार दीवारें छत दरवाजा
लिया किराये से
है ताकीद मकां मालिक की
निकलो बाँये से
सिर पर सूरज देह पसीना
मन पर मालिक की घुड़की
खेत छोड़ आ गया शहर में
गाँव से भैया राम रतन

काका दाऊ भाई बऊआ
सब संबोधन छूट गए
मंगल कलश सुनहरे सपनों–
वाले दर के फूट गए
ढूँढ़–ढूँढ़ कर हार गया मन
बेचैनी का रोग लगा
अम्मा–बाबू झाँकें अक्सर
घाव–से भैया राम रतन

अक्सर जाम हुए चौराहे
सड़कें झण्डे लिए जुलूस
ऊँची–ऊँची मीनारें
करतीं सन्नाटा–सा महसूस
जड़ से उखड़े अस्थाई–से
पेड़ों वाला जंगल है
नगरी लिपी–पुती है सिर तक
पाँव से भैया राम रतन

(2)

खेतों पर उन्नति के बादल
देखे–भाले हैं
शहर गए मजदूर
खेत सब बैठे–ठाले हैं

अम्मा दरती धान
कुनैता चावल नित उगले
तंगी में भी पूरे घरको
खाने में भात मिले
अब तो अम्मा और कुनैता
दोनों नहीं रहे
बैठक अपने सूनेपन का
किससे दर्द कहे
हिरण–चौकड़ी गाँव भरे
गलियों में छाले हैं

अमरूदों का बाग
सख्त पहरे में जकड़ा है
रखवाले ने गोबर को
परसों ही पकड़ा है
आम सिंघाड़े केले
कबसे बाँटे नहीं गए
बनियागिरी बहुत अपनाई
घाटे नहीं गए
नेताओं का खेत गाँव
गायब रखवाले हैं

❖❖❖

औरत!

– राधा रानी चौहान 'मानवी'

हौंसलों की ऊँची उड़ान है औरत!
कभी सागर सी गहराई, तो कभी आसमान है औरत!

आशा–निराशा पाल कर भी, हौंसला खोती नहीं
देख पीड़ा स्वजनों की, वह चैन से सोती नहीं
नदिया की पावन धार कभी, तो चंचल है लहरों सी
मौन सीमा पार का आह्वान है औरत!
हौंसलों की ऊँची उड़ान है औरत!

सामर्थ्य तक स्वाभिमान को डिगने नहीं देती
यथार्थ की नींव को कभी हिलने नहीं देती
प्रीत की गंगा बहाती, मिलती है संगम सी,
पूरब के उगते सूर्य की पहचान है औरत!
हौंसलों की ऊँची उड़ान है औरत!

स्वयं सिद्धा, सहजता ही पर्याय हैं इसके
सृजन शक्ति समेटे विश्व की, फिर भी कहते नादान है औरत!
कभी उत्सव, कभी रिश्ते, कभी स्वागत का दीपक बन
सच कहूँ तो दोस्तों, हर घर की जान है औरत!
हौंसलों की ऊँची उड़ान है औरत!

❖❖❖

संपर्क : नेहरु नगर, भोपाल, मध्यप्रदेश

जिन गढ़ कोठि किए कंचन के, छोड़ गया सो रावन, काहे कीजत है मन भावन।
जब जम आई केस ते पकरै, तहँ हरि को नाम छुड़ावन।
काल अकाल खसम का कीना, इहु परपंच वधावन।
कहे कबीर ते अंते मुक्ते, जिन हिरदैं राम रसायन।।
–कबीर

तुम मिलीं

– सुनीता मिश्रा 'सुनीता'

चार दशक बाद तुम मिलीं
चाँदनी सा चहकता बचपन
फिर आया लौट।
यादों का सिलसिला चला
जीवन खिला पूरे सौन्दर्य से, गरिमा से
करते रहे जागकर कनबतियाँ,
इतिहास की परतें खोलते।
सुख–दुख बोल रहे थे
निशा जाग रहीं थी
कब कैसे बज गये,
साढ़े चार जान ही नहीं पाये,
उलझी–सुलझी, कही अनकही बातें
गुजरतीं रहीं, अतीत के रास्ते,
वर्तमान के सेतु पर
चहल–कदमी करती रहीं कहानियाँ
सफेदी बालों और झुर्रियों की
गहन गुफा से स्मृति के अतल–तल से
बस्ती, बीथियों को बातें,
सरोवरों का स्नान, कैरियों को तोड़ना
कोयल के साथ कुहु–कुहु कूकना
फलों में जूझना चढ़कर हिलाना
अमरूद, रसराज, बेर
स्कूल की आपा–धापी
कबड्डी, खो–खो, छुई–मुई।
सहसा झकझोर कर
जगाया किरणों ने
आँगन मे खड़ी
मुस्कुरा रही थी जो
कह रही थी,
अरे! दिन चढ़ आया
कब तक सोती रहोगी?
हड़बड़ा उठी मैं
कहाँ गया वह स्वप्न
जिंदगी से दूर–दूर
तर होता गया
रेत सा फिसल गया,
काश! रात ही होती,
पर सबेरा, आखिर सबेरा है।
होना ही था।

❖❖❖

संपर्क : जबलपुर, मध्यप्रदेश

शमए–मज़ार थी, न कोई सोगवार था
तुम जिस पे रो रहे थे ये किस का मज़ार था
जादू है या तिलिस्म तुम्हारी ज़बान में
तुम झूठ कह रहे थे, मुझे एतिबार था
–बेखुद देहलवी

प्रिये

– डॉ॰ आशा गुप्ता

तुम चले गये कुछ कह न सके
मैं रही देखती तुम्हें प्रिये।

क्या तुमने यह महसूस किया
मेरी हालत अब कैसी है
मेरा ही अपना चला गया
किस पर मैं शृंगार करूँ।

यह भरी जवानी लेकर मैं
किस ओर चलूँ, किस ओर नहीं
कुछ भी समझ न आये मुझको
मैंने तुमको जो दिया वही–
मेरा वह सब कुछ अपना था।

मैं पलक बिछाए देख रही
कब आकर फिर अपनाओगे
यह जीवन मेरा, तेरा है
तेरा ही जीवन मेरा है
क्या मुझसे ऐसी भूल हुई
जो छोड़ा मुझको चले गए।

क्या जीवन का संबंध यही
दुखमय बिछुड़न की बेला में
कोई अपना अब यहाँ नहीं
किस पर अब मैं शृंगार करूँ
अब तुम्ही बताओ मुझे प्रिये!

❖❖❖

संपर्क : कदमा, जमशेदपुर, झारखण्ड

अगर इरादे पक्के हों

– डॉ॰ नलिनी विभा 'नाज़ली'

प्रतिपद ही आक्रान्त हो मानव, पीड़ित और परित्रस्त हुआ हो,
ताप–पाप से खिन्न हृदय और जीवन अस्त–व्यस्त हुआ हो,
साँस–साँस भी व्यथा, अश्रुओं और आहों से त्रस्त हुआ हो,
धर लें धीरज, विषम समय के जब–जब पड़ते धक्के हों।
हों असाध्य भी साधित पथ के अगर इरादे पक्के हों!!

कंटक–मुकुट धरें जो सिर पर, शान्त करें जो भीषण घर्घर,
आत्मदान आदर्श हो जिनका कर्मयोगियों की इस भू पर,
संकल्पों को सत्य बनाने में दिन–रात रहें हो तत्पर;
सृजन–विरोधी, अमन के दुश्मन भी फिर हक्के–बक्के हों!
बनें सारथी राष्ट्रीय–रथ के अगर इरादे पक्के हों!!

धन, उपाधियाँ, मानपत्र, करतल ध्वनियाँ और जयजयकार,
हर शाब्दिक–संग्राम वृथा है, शीष चढ़ाना है दरकार,
जोश जगा दे, कुरुक्षेत्र के 'मा भैः' की जो करें हुंकार;
अत्याचारों–तले पीसते चाहे युगों के चक्के हों!
लख विवेक–सागर को मथ के अगर इरादे पक्के हों!!!

विश्वशान्ति का राग सुनाती गूँजे सरस बाँसुरी सुर भर,
चिन्ता जिनको लोकमान्यता राजमान्यता की लेश न भर,
प्राणिमात्र के हित में 'स्थित प्रज्ञ' रह कर ही कार्य करें गर;
चाहे हवस में वतन लूटने की फिर चोर–उचक्के हों।
विषधर भी ले जाएं नथ के, अगर इरादे पक्के हों!!

❖❖❖

संपर्क : हमीरपुर, हिमांचल प्रदेश

चेहरों का कोलाज़

– डॉ॰ पूनम चन्द्रा

चेहरों का कोलाज़ अद्‌भुत
परिचित और अपरिचित क्या
जीवन के इस रंग मंच पर
तेरा–मेरा अभिनय क्या।

रह जायेगी मोहक सुगन्ध
परिचय और अपरिचय क्या,
विश्वास, प्रेम, समर्पण अविचल
सम्बन्ध और अहसास क्या।

उपवन का हर फूल खिलखिला
गर्म धूप–मधुमास क्या,
जीवन के इस युद्ध क्षेत्र में
जन्म–मृत्यु की धारा क्या।

अविरल बहते जाना है
मिलना और बिछुड़ना क्या,
खाली हाथ आया है, खाली ही जाना है
निर्भय बन तुझको भय क्या।

कुछ चेहरे जैसे रेत पर बरसी
बूँदों से बुझ जाते या,
बीच भँवर में करें किनारा
कुछ रुक कर सुलगाते क्या।

साथ निभाते जन्म–जन्म भर
द्विगुणित, सुख समृद्धि या,
जोड़ घटाव करें, मोह क्षोभ का
जीवन गणित पहेली क्या।।

❖❖❖

संपर्क : पीलीभीत, उत्तर प्रदेश

सूचना

पारस–परस के पाठकों और योगदानकर्त्ताओं के लिए एक खुश खबरी यह है कि 'प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन' ने स्वर्गीय पारसनाथ पाठक 'प्रसून' की स्मृति में एक 'प्रसून प्रोत्साहन पुरस्कार' शुरू करने का निर्णय लिया है। इस पुरस्कार की राशि 1100 रुपये नकद है। यह पुरस्कार प्रत्येक अंक में प्रकाशित किसी ऐसी मौलिक अप्रकाशित और उत्कृष्ट रचना को दिया जायेगा जिसमें काव्य का मर्म और धर्म समाहित हो और जो काव्य की कसौटी पर खरी उतरती हो। यदि एक से अधिक रचनाएं पुरस्कृत करने योग्य पायी गयीं तो राशि को तद्‌नुसार विभक्त कर दिया जायेगा।

पुरस्कार के बारे में अंतिम निर्णय प्रसून प्रतिष्ठान प्रबंधन का होगा और इस बारे में प्रबंधन के निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकती।

रचनाकार अपनी रचनाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)
Email : paarasparas.lucknow@gmail.com / shivkumarbilgrami99@gmail.com

घाट गुँजित हो गए हैं

– डॉ॰ वीणा अग्रवाल

छू दिये हैं, तार तुमने
राग झंकृत हो गए हैं।
भैरवी, आसावरी के,
घाट गुंजित हो गए हैं।

परस, पारस है तुम्हारा
दरस, वृंदावन हमारा,
काम भी ऐसा कि जैसे
सामने हो शिव हमारा,
कामना कंदर्प जैसे
आज विगलित हो गए हैं।

राग भी ऐसा जगाया
मन विरागी हो चला,
धूप दीपक ध्यान छोड़े
मंत्र सा जगने लगा,
हम हुए आहूत तो फिर
आप प्रगटित हो गए हैं।

चाँद अम्बर में उगा हो
चाँदनी है पास मेरे,
घन घटाओं में घिरे हो
किन्तु पावस पास मेरे,
आज सुर और ताल मेरे
क्यों विलम्बित हो गए हैं।

तुम्हीं आलम्बन हमारा
भाव भी अनुभाव तुम हो,
तुम्हीं ने श्रृंगार गाया
सर्ग लज्जा का तुम्हीं हो,
आपके रसराज के,
मन प्राण मधुकर हो गए हैं।

❖❖❖

संपर्क : कोटा, राजस्थान

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन महि पवित्र,
पावनि पय सरित सकल मल– निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम लोक–लोचनाभिराम,
बाम अंग बामाबर बिस्व–बंदिनी।।
चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद चंद चंदिनी।
उदित सदा बन–अकास मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी।।

–तुलसीदास

नारी शक्ति

– ममता शर्मा

वक्त–वक्त की बात है,
कभी नारी में सीता, सावित्री, अहिल्या का साया था,
जिसने जीवन को पवित्र बनाया था।
वक्त ने कुछ ऐसी करवट बदली,
इक्कीसवीं सदी में हर ओर हाहाकार है,
नारी ने बदला अपना शृंगार है,
जिन हाथ–पैरों में चूड़ियाँ और पायल होती थीं,
वहां अब स्कूटर और कार है।
हर क्षेत्र में नारी ने अपना परचम लहराया है,
फौज़, आफिस और राजनीति से लेकर
अंतरिक्ष तक में अपने हुनर का कमाल दिखाया है।
जिसके होने से पुरुष ने वजूद पाया है।
वही उस पर हुकूमत करता है,
जब भी औरत ने क़दम बढाया है,
आगे बढ़ कर पुरुष ने ही उसे दबाया है।
नारी ही दुर्गा है,
नारी ही शक्ति है,
फिर भी क्यों उसने क़दम–क़दम पर धोखा खाया है।
हर समय में नारी को ही छला जाता रहा है।
ऐ कमज़र्फ इंसान!
कब समझेगा तू उसने भीतर की ज्वाला को ?
जहाँ उसने शीतल छाया का वृक्ष लगाया है,
जो त्याग और बलिदान की मूरत है,
उसे तूने बेवफ़ा कहकर ठुकराया है।
प्यार मिला तो खुश हुई,
दर्द मिला तो उदास,
किससे क्या शिकायत करे,

.....जारी

वो हकीकत को समझती है,
चुप रहती है,
सब सहती है,
कुछ नहीं कहती है,
क्योंकि उसे तो समाज ने ऊँची पदवी पर बिठाया है,
और उसे सिर्फ माँ का दर्जा दिलाया है।
इंदिरा गाँधी, मदर टेरेसा, कल्पना चावला ने
आज के युग में नारी को आत्म–सम्मान दिलाया है।
आज के सन्दर्भ में यह कहना उचित नहीं है कि
"अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दूध और आँखों में पानी"
वो पुरूष के कंधे से कन्धा मिला कर चलती है,
समाज में पुरुष के समान बराबर की अधिकारी है।
नारी अब अबला नहीं,
सबला है।

❖❖❖

संपर्क : 2166, सेक्टर–16, फरीदाबाद

जो अप्राप्त है करो निरन्तर, प्रयत्न उसे पा जाने का,
प्राप्त हुए की रक्षा करते, करो प्रयत्न बढ़ाने का,
बढ़े हुए को रखो पात्र में, योग्य व्यक्तियों के लाभार्थ,
करते चलो सावधानी से जीवन के चारों पुरुषार्थ।।

–दीनानाथ दिनेश

बदल गयी देश की तस्वीर

– डॉ॰ (सुश्री) पीयूष भट्ट 'पीयूष'

बदल गयी तस्वीर देश की, स्वतन्त्रता आने से।
अपने ही घर–आँगन अब लगते हैं अनजाने से।।

काबुल और कन्धार, सिन्धु–तिब्बत, लद्दाख–बेरूवाड़ी,
मानसरोवर, ब्रह्मदेश, बंगाल और उसकी खाड़ी।
बोलो तुमको कैसा लगता इन सबके कट जाने से?
अपने ही घर आँगन अब .....

बदल गया भूगोल, देश का बदल गया इतिहास।
संस्कृति बदली, दर्शन बदला, बदल गया विश्वास।
अदला–बदली की स्वदेश पर छाई, ऐसी अमर बेल।
ये घात और प्रतिघात, रही भारत माता अनवरत झेल।
बोलो भविष्य कैसा होगा, साँपों को दूध पिलाने से।
अपने ही घर आँगन अब .....

उद्वेलित सरयू की धारा, सहमी–सहमी मथुरा–काशी।
खायें यहाँ और गीत वहाँ के, ये हैं कैसे भारतवासी?
कैसे इनके मनोभाव हैं गीत एकता के गाते हैं
मूल्य और मानक, क्या इनको भारतीयता के भाते हैं ?
गधा कहीं बछड़ा बनता है, बार–बार नहलाने से।
अपने ही घर आँगन अब .....

आतंकवाद के साये में अब जनमानस जलता है।
आज यहाँ का प्रजातन्त्र घोटालों से चलता है।
खून बह रहा निर्वाचन में, भ्रष्ट आचरण है शासन में।
जातिवाद का जहर घुल गया, आज देश के जनमानस में।
बोलो! बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमें कहाँ ले जायेंगी ?
बोलो! तुमको कैसा लगता यह परिवर्तन आने से ?
अपने ही घर आँगन अब .....

❖❖❖

संपर्क : नदी गाँव, जालौन
उत्तर प्रदेश

जीवन का एहसास

– कल्पना चौरसिया

अधरों पर मधु मुस्कान लिये, अन्तर में रोती रहती हूँ।
सारे उपहार भुला करके, एक चोट देखती रहती हूँ।।

कुछ खिंची–खिंची सी रहती हूँ, कुछ दुखी–दुखी सी रहती हूँ।।
जीवन की सुन्दर बगिया में, बस थकी–थकी सी रहती हूँ।
जो सपने थे सब टूट गए, जो अपने थे वो छूट गये।
हिम्मत की सीढ़ी टूट रही, गिरी–गिरी सी रहती हूँ।।

आशा के दीप जलाये, सपनों के महल सजाये थे।
इच्छा थी हम दोनों होंगे, बस नन्हीं सी दुनिया होगी।
स्वालम्ब हमारा शिथिल हुआ, अब बुझी–बुझी सी रहती हूँ।
जीवन की सुन्दर बगिया में, बस थकी–थकी सी रहती हूँ।

गुरु ने जग चित्र दिखाया था, जीवन से प्यार सिखाया था।
पर एक कमी के कारण से, मैं मिटी–मिटी सी रहती हूँ।
सोचा है सदा स्वतंत्र रहूँ, गृह से पूर्ण विरक्त रहूँ।
पर अपने स्वप्निल जालों से फँसी–फँसी सी रहती हूँ।

तुमने मुझे खुशी दी है, सौन्दर्य दिया है, शोभा दी है।
परिवार दिया सुन्दर शोभन, जो मित्र मिले वह भी सज्जन।।
सब दे क्यों मन छीन लिया, चन्दा सा बदन मलीन किया।
इस एक कमी के कारण मैं, लुटी–लुटी सी रहती हूँ।।

संपर्क : कटनी, मध्यप्रदेश

❖❖❖

शबनम ने रो के जी ज़रा हल्का तो कर लिया
ग़म उसका पूछिए जो न आंसू बहा सके
–'सलाम' संदेलवी

ए दर्द ! भला अब तू ही बता

– सखी सिंह

मैं तुझसे जितना दामन छुड़ाती हूँ
उतने ही पैर पसार तू
मेरे सिर से पैर तक
रेंगता चला आता है...
ए दर्द ! भला अब तू ही बता
तेरा मेरा कितना गहरा नाता है ?
मैं चाहती हूँ तू मुझसे दूर रहे
और मैं तुझसे दूर रहूँ
पर क्यों तुझे,
मेरा ही साथ, हमेशा भाता है ?
दर्द बता दे आज मुझे
सच–सच कहना चुप न रहना
तू हरदम क्यों आजकल
बस, मुझ तक खिंचा आता है ?
क्यों साथ मेरा तुझे भाता है ?
जिनसे नाता जोड़ा मैंने
सबने तोड़ दिया रिश्ता
अपनापन तो मिला नहीं
दर्द मिला मेरा हिस्सा,
चाहत बस इतनी भर थी
प्यार भरी मुस्कान मिले
मुझे दर्द से जीवनदान मिले
सुनते है दिल के रिश्ते भी
खून के रिश्तों से
ज्यादा पक्के होते हैं
पर, कुछ लोग यहाँ
एहसासों की हत्या कर
झूठे रिश्ते ढोते है
बस, झूठे रिश्ते ढोते हैं।

(2)

रुला दो मुझे

मैं आज तुमसे कुछ मांगती हूँ

वादा करो, न करोगे रुसवा मुझे

तुम कोई अच्छी सी दुआ दो मुझे

या फिर ऐसा करो, रुला दो मुझे

तुमको भुलाऊँ कभी मैं अगर

तो मर जाऊँ मैं, ये दुआ दो मुझे

रहूँ जो खुश मैं तेरे बग़ैर

ऐसा न कोई सिला दो मुझे

बहुत सी मायूसियाँ मिली हैं 'सखी'

इन मायूसियों से निकालो मुझे

मैं न कहती कि सब कुछ मुझे दो

मेरा प्यार ही बस दिला दो मुझे

❖❖❖

संपर्क : ज्ञानेश्वरी इंस्टिट्यूट
ग्रेटर नोएडा, एन.सी.आर. दिल्ली

नदी और नर

– अभिनव पारासरी 'सागर'

एक सरिता में बहता जल।
कितनों की प्यास बुझाता है
कितनी बाधाओं से लड़कर
अपने पथ पर जाता है।।

पशु– खग सब पीते पानी
इससे है पेड़ों की जवानी
इसमें तो जीवन बसता है
कितने दुख यह सहता है।।
इसका क्या व्याख्यान करूँ।
खुद अपनी कथा सुनाता है।
एक सरिता में बहता जल।
कितनों की प्यास बुझाता है।।

इतनी दूर गई बहती
सागर में मिल जाती है।
कितने पारस अपने साथ
बहा कर ले जाती है।
एक दिन वो आता है।
अस्तित्व स्वयं खो जाता है।
एक सरिता में बहता जल।
कितनों की प्यास बुझाता है।।

ऐ मानव! तू भी सरिता बन।
कर इसके जैसा निर्झर मन।
स्वयं छोड़ दुनिया को देख।
खीच दे तू सच्चाई की रेख।
पर छोड़ के सच, पापों को
जाने क्यों अपनाता है।
एक सरिता में बहता जल।
कितनों की प्यास बुझाता है।।

❖❖❖

संपर्क : बरेली, उत्तर प्रदेश

हौसला

– धर्मेन्द्र त्रिपाठी

मुझे मालूम नहीं
कि विश्वास की नदी में
तैर सकूँगा
या अविश्वास के भंवर में
डूब जाऊँगा
मुझे यह भी नहीं मालूम
कि युगान्तर बन सकूँगा
या कि डाल दिया जाऊँगा
रद्दी की टोकरी में।

मुझे मालूम नहीं
पत्थरों को टकराकर
पैदा कर सकूँगा आग
या दब कर रह जाऊँगा
इन्हीं के बीच पीली घास
की तरह।

मुझे मालूम है
इस दो मुँहे मौसम में
कितना कठिन है
हिम्मत का बीज बोकर
काटना सामर्थ्य की फसल
बंजर हो चली संवेदना की
भूमि पर।

फिर भी यूटोपिया नहीं
नये अनाज पैदा करना
मुश्किल है तो
बस स्नेह के पानी की
सिंचाई और
कीटनाशकों के बड़े बाजार से
वह दवा चुनना

जिसे नफरत हो मात्र
कीटों से ही

बादल अभी गुम
नहीं हुये हैं आसमान से,
आज भी जंगलों में झूम रहे हैं पौधे
अपनी सहज मौलिकता के साथ
अभी सूरज डूबने से पूर्व
चिड़ियों के कान में दे जाता है
फिर लौटने का आश्वासन
अभी बहुत कुछ किया जा सकता है
ठीक।
हौसले की मुठ्ठी में भींच
रखनी होगी जमीन
जो दरक न सके किसी की
आँख भर तरेरने से।

❖❖❖

संपर्क : गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

बलिदान

– प्रदीप शर्मा 'दीपक'

तुम्हें चाहिए बलि मैं दूँगा
ठहरो कुछ तो कहने दो
मानवता में गरल न घोलो
अमृत भी कुछ रहने दो।
तुम्हें चाहिए.....

एक निरीह भोली मानवता
नहीं रही है छाँवों में
नगर–नगर में ढूँढ रहे हम
गली–गली और गाँवों में
भोली मानवता का फिर से
वसन हरण ना होने दो
तुम्हें चाहिए.....

रक्षक ही भक्षक हो जायें
फिर उस देश का क्या होगा
मधुपराग से रहित कली का
सारहीन जीवन होगा
विश्वासघात को छोड़ के
जीवन सरिता को निर्झर बहने दो
तुम्हें चाहिए.....

नववय लतिका भय से आकुल
छिप–छिप कर क्यों खिलती है
मानवता की राह में देखो
छलना ही क्यों मिलती है
अब चुप–चुप नवलतिका को भी
निर्भय होकर जीने दो
तुम्हें चाहिए.....

❖❖❖

संपर्क : शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश

हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा

– अशोक सिंहासने 'असीम'

इंसां के ईमान, तुम्हारा क्या होगा
मेरे हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा।।

रिश्वत के जंजाल में फँसते जाते हो
घोटालों की बाढ़ में बहते जाते हो।।
धर्म नहीं कोई, ना ही ईमान है
भ्रष्ट हो तुम और पक्के बेईमान हो।
क्यों बनते बेईमान, तुम्हारा क्या होगा।।
मेरे हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा।।

पाँच साल में गैल हमारी आते हो
रिश्वत में दारू बोतल दे जाते हो।
साम, दाम और दण्ड भेद अपनाकर
तुम फर्जी मतदान बहुत करवाते हो।
भ्रष्टों की संतान, तुम्हारा क्या होगा
मेरे हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा

संसद से सड़कों तक जलवे सिर्फ तुम्हारे हैं
ईश्वर औ अल्लाह तुम्हीं से हारे हैं।
निपटाओ अब जो भी काम हमारे हैं
अगले आम चुनाव भी आने वाले हैं।
हे जनता के दरबान! तुम्हारा क्या होगा।
मेरे हिन्दुस्तान तुम्हारा क्या होगा।।

❖❖❖

संपर्क : बालाघाट, मध्यप्रदेश

मुरली

– मनोज कुमार 'मंजुल'

मुरली उठ–उठ अधरों पर
चुपचाप चली जाती है
उँगली नच–नच मुरली पर
संगीत नया गाती है।

तेरी चाल अनोखी रे
मुरली को भाती है
मुरली फिर मेरी हालत
सबको समझाती है।

नपे–नपे तेरे पग
क्या होगा मेरे रब
तू मदमाती है
मुरली की साँसें रुकती हैं
जब तू कुछ गाती है।

आहट तेरी सुनकर मेरी
बात बिगड़ जाती है
मुरली कम्पन करती है
तो तान बिगड़ जाती है।

तीखी काया नयनों की
घायल कर जाती है
दर्द को मेरे कराह–कराह कर
मुरली गाती है।

मुझे सताकर धीरे से
जब वो टकराती है
थम जाती साँसें मेरी
और धरा धँस जाती है।

❖❖❖

संपर्क : राम बिहार कालोनी
आगरा, उत्तर प्रदेश

गिर गया होता तो चढ़ गया होता

– राजेन्द्र शुक्ल 'सहज'

सुन गया होता, तो पढ़ गया होता।
उठ गया होता, तो बढ़ गया होता।
मैं भी जमाने में मशहूर हो जाता अगर,
गिर गया होता, तो चढ़ गया होता।

हीरा हुआ होता, तो जड़ गया होता।
सोना हुआ होता, तो गढ़ गया होता।
ये तो अच्छा था मैं चलता रहा वरना,
थम गया होता, तो सड़ गया होता।

फंदा होता, तो गले पड़ गया होता।
फाँस हुआ होता, तो गड़ गया होता।
तुम जरा भी साथ दे देते मेरा तो मैं,
ये जहाँ क्या खुदा से लड़ गया होता।

पशु हुआ होता, तो अड़ गया होता।
पंछी हुआ होता, तो उड़ गया होता।
अपनी धुन में चलता रहा मैं वरना,
डर गया होता, तो मर गया होता।

❖❖❖

संपर्क : बालाघाट, मध्यप्रदेश

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित/मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार/कॉपीराइट धारक से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक/अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **प्रसून–प्रतिष्ठान** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

लिफ़ाफ़ा

– पंकज सुबीर

तुमने कहा था
मेरे सारे पत्रों को जला देना
मैंने वैसा ही किया
प्रश्न उसी विश्वास का था
जिसके चलते वो पत्र लिखे गये थे
विश्वास करो
मैंने सारे पत्र जला दिये
केवल एक लिफ़ाफ़ा बचा लिया है
तुम्हारे पहले पत्र का लिफ़ाफ़ा
इस पर लिखा है मेरा नाम
जो शायद तुमने पहली बार लिखा था
शायद एक दो बार तुम्हारी
उंगलियां लरजीं भी थीं
इसीलिये मेरे नाम के एक दो अक्षर
कुछ टेढ़े मेढ़े हैं
समय ने इस लिफ़ाफ़े में
काग़ज़ी सौंधी गंध भर दी है
यह लिफाफा जो तुम्हें मेरे जीवन में लाया था
इसे बचाकर
मैंने तुम्हारे विश्वास को तोड़ा नहीं है
तुमने तो पत्र को जलाने को कहा था
यह तो लिफाफा है
इसे बचाकर शायद मैंने बचाया है
जीवन में तुम्हारे पुनः
लौट आने की संभावनाओं को

❖❖❖

संपर्क : सिवनी, मालवा, मध्यप्रदेश

प्रकृति की गोद

– संजय पाल शेफर्ड

(1)

आओ! हम और तुम भूल जाएँ
एक दूसरे का अतीत
वर्तमान की खिड़की से
झाँकना सीखें
यदि संभव हो मेरे मनप्रीत
मैं खिड़कियाँ खोलूँगा
तुम खिड़कियों से परदे हटाना
टुकड़े–टुकड़े रोशनी से
अँधेरे कमरे भर जाएँगे
उताल हवाएँ नाचेंगी
गाएँगी
गुनगुनायेंगी शब्दगीत
हम दोनों एक दूसरे की
बाँहों में बाँहें डालकर झूमेंगे
एक दूसरे के वक्ष
होंठो को चूमेंगे
प्रकृति हमें हँसना सिखा देगी।

(2)

असीम यंत्रणाएँ

जीवन छोटा है
यंत्रनाएँ असीम
मैं दुखों को
खोना नहीं
दर्द से
उबरना चाहता हूँ
सज्जनों!
महानुभावों!
मुझे सूली पर
मत लटकाओ
नहीं तो
मैं ईश् बन जाऊँगा
तुम तो जानते हो न
पवित्र घाव
इंसान को
ईश्वर बना देता है।

❖❖❖

संपर्क : भारतीय मीडिया संस्थान, दिल्ली

दुर्लभ नहीं मनुज के हित, निज वैयक्तिक सुख पाना।
किन्तु कठिन है कोटि–कोटि मनुजों को सुखी बनाना।
–रामधारी सिंह दिनकर

स्वतंत्रता दिवस

– लक्ष्मीदत्त तरुण

एक बच्चा झुग्गी झोपड़ी का रहने वाला
मन का एकदम सच्चा और भोला–भाला
उस रात वह बहुत खुश, बड़ा ही मस्त था
क्योंकि दूसरे दिन पन्द्रह अगस्त था
सोच रहा था अबकी बार
वो भी तिरंगा लहरायेगा,
पूरा देश स्वतंत्रता दिवस मनाता है
इस बार वो भी पावन पर्व मनायेगा
किन्तु गरीब बच्चा झण्डा कैसे खरीदेगा
सोचा किया, बड़ी देर तक
अचानक उसे कुछ सूझा
और वो
गया कचरे के ढेर तक
कचरे में से हरा सफ़ेद तथा केसरिया रंग के
तीन कपड़े उठा लाया
उन्हें साफ़ धोया
धोकर सुखाया
झण्डे के बीच में चक्र बनाया
सुखद कल्पनाओं में खो गया
झण्डेको सिरहाने लगाके सो गया
सुबह जाग़ा तो अभाग बड़ा दुखी–परेशान था
उसका चेहरा उतर गया था
रात कोई चूहा
उसका झण्डा कुतर गया था
उस दिन से उसके दिमाग में
एक अजब सा फितूर चढ़ा रहता है
आये दिन वो चूहों के पीछे पड़ा रहता है
चूहे को देखते ही वो दौड़ता है
अब वो किसी भी
चूहे को ज़िंदा नहीं छोड़ता है
और हम को पता है
कि देश को आये दिन
कैसे क़ैसे चूहे कुतर रहे हैं
हम सब लाचार हैं किस कदर
कि इनका कुछ भी नहीं कर रहे हैं

❖❖❖

मुश्किलों के दौर को...

– शिवकुमार बिलग्रामी

मुश्किलों के दौर को हम ख़ुद पे ऐसे सह गये
कुछ तो आँसू पी लिए कुछ एक आँसू बह गये

उम्र भर आँखों में पाला था जिन्हें अपना समझ
ख़्वाब वो ऐसे गये हम देखते ही रह गये

रफ़्ता–रफ़्ता रात दिन हमको मिटाया वक़्त ने
रेत का हम घर न थे जो एक पल में ढह गये

क्या बताऊँ मैं तुम्हें अब ज़ख्म कैसे हैं मेरे
भर गये हैं ज़ख्म लेकिन दाग़ फिर भी रह गये

आप उनके दर्द को हरगिज़ न कमतर आँकिए
वक़्त थी यह दास्तां जो मुस्कुराकर कह गये

(2)

अपनो से न ग़ैरों से कोई भी गिला रखना
आँखों को खुला रखना होठों को सिला रखना

जो ज़ख्म मिला तुमको अपने ही अज़ीज़ो से
क्या खूब मज़ा देगा, तुम ज़ख्म छिला रखना

मासूम बहुत हो तुम दुनिया कि निगाहों में
तकलीफ़ उठाकर भी चेहरे को खिला रखना

यह दौरे सियासत है इसमें न सगा कोई
इसमें यह रिवायत है, बस हाथ मिला रखना

❖❖❖

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

(जन्म : 5 अगस्त, 1915; निधन : 27 नवम्बर, 2002)

हम पंछी उन्मुक्त गगन के
पिंजरबद्ध न गा पायेंगे
कनक तीलियों से टकराकर
पुलकित पंख टूट जायेंगे

नीड़ न दो, चाहे टहनी का
आश्रय छिन्न–भिन्न कर डालो,
लेकिन पंख दिये हैं, तो
आकुल उड़ान में विघ्न, न डालो

(शिवमंगल सिंह 'सुमन' की एक कविता का अंश)

सृजन-स्मरण

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

(जन्म : 15 सितम्बर, 1927; निधन : 24 सितम्बर, 1983)

चिड़िया को लाख समझाओ
कि पिंजड़े के बाहर
धरती बहुत बड़ी है, निर्मम है,
वहाँ हवा में उन्हें
अपने जिस्म की गंध तक नहीं मिलेगी।
यूँ तो बाहर समुद्र है, नदी है, झरना है
पर पानी के लिए भटकना है,
यहाँ कटोरी में भरा जल गटकना है।
बाहर दाने का टोटा है,
यहाँ चुग्गाह मोटा है।
बाहर बहेलिए का डर है,
यहाँ निर्द्वन्द कंठ–स्वर है।
फिर भी चिड़िया
मुक्ति का गाना गाएगी,
मारे जाने की आशंका से भरे होने पर भी,
पिंजरे में जितना अंग निकल सकेगा, निकालेगी,
हरसूँ, ज़ोर लगाएगी
और पिंजड़ा टूट जाने या खूल जाने पर उड़ जाएगी।